ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 **PP. No.- 151-153**

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e–I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-19, No.-II, Issues-36, YEAR-April-June. 2025

पातंजल योगसूत्र एवं हठयोगप्रदीपिका में समाधि : एक विश्लेषणात्मक विमर्श

राजाराम

शोध अध्येता– दर्शनशास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ0प्र0) भारत

Received-30.04.2025, Revised-06.05.2025, Accepted-12.05.2025 **E-mail : rajarkush@gmail.com**

सारांशः पातंजल योगसूत्र और हठयोगप्रदीपिका, योग के दो प्रमुख ग्रंथ हैं, जो योग की दो अलग–अलग परंपराओं को प्रस्तुत करते हैं। पातंजल योगसूत्र में समाधि को योग का चरम लक्ष्य माना गया है, जिसमें समाधि की विभिन्न अवस्थाओं और स्वरूपों का विस्तृत वर्णन मिलता है। पातंजल योगसूत्र में समाधि को अष्टांग योग की अंतिम अवस्था बताया गया है, जहाँ चित्त वृत्तियों का निरोध होता है और आत्मा का परमात्मा से तादात्म्य स्थापित होता है। जबकि हठयोगप्रदीपिका हठयोग की साधना पद्धति पर केंद्रित है, इसमे समाधि तक पहुँचने के लिए शारीरिक और मानसिक साधनाओं पर जोर दिया गया है। इसमें मन का आत्म में तादात्म्य होने पर आत्म एवं मन का एक होना ही समाधि कहा जाता है, अतः इस शोध पत्र में इन दोनों ग्रंथों में समाधि के स्वरूप, उसकी प्रक्रिया और उद्देश्य का तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है। साथ ही, इन दोनों परंपराओं के बीच के अंतर और समानताएँ भी रेखांकित की गई हैं।

कुंजीभूत शब्द– समाधि, अष्टांग योग, चित्त वृत्ति, हठयोग, साधना, कैवल्य, पातंजल योगसूत्र, हठयोगप्रदीपिका, आत्मा, मुद्रा

प्रस्तावना– योग क्रियात्मक और सैद्धान्तिक पक्ष को स्पष्ट तौर पर यह विवेचित करती हैं कि जीवन के लिए सिद्धांत और व्यवहार दोंनो का ज्ञान होना आवश्यक हैं जिसके लिए योगशास्त्रों में महर्षि पतंजलि द्वारा रचित पातंजल योगसूत्र और स्वामी स्वात्माराम द्वारा रचित हठयोगप्रदीपिका महत्वपूर्ण हैं। योगसूत्र के रचनाकाल के विषय के विषय में प्राप्त होते हैं परंतु विद्वानों ने यह सिद्ध किया कि यह ग्रंथ ईसा पूर्व द्वितीय सदी का हैं, जो महर्षि पतंजलि कृत है। पतंजलि ने इसको चार पादो में विभाजित किया जिसका नाम क्रमशः समाधिपाद, साधनपाद, विभूतिपाद और कैवल्यपाद हैं। यह मूलतः संस्कृत भाषा मे लिखा गया हैं, जो साधना के परिप्रेक्ष्य में क्रमबद्ध तरीके से बतलाया गया हैं, इसी साधना के द्वारा समाधि को प्राप्त किया जा सकता हैं। वहीं हठयोगप्रदीपिका जो स्वात्माराम कृत हैं यह लगभग आठवीं शताब्दी के आस–पास का हैं। यह ग्रंथ शरीर के संवर्द्धन पर बल देता हैं।

योग भारतीय अध्यात्म और साधना परंपरा का एक महत्वपूर्ण अंग है, जिसमें समाधि को योग साधना का परम लक्ष्य माना गया है। समाधि का तात्पर्य उस अवस्था से है जहाँ साधक की चेतना स्थिर होकर परम सत्य से तादात्म्य स्थापित कर लेती है। योगशास्त्र में समाधि की संकल्पना को गहराई से समझाने के लिए विभिन्न ग्रंथों की रचना हुई, जिनमें योगशास्त्र के दो प्रमुख ग्रंथकृ पातंजल योगसूत्र और हठयोगप्रदीपिकाकृसमाधि की अवधारणा को भिन्न–भिन्न दृष्टिकोणों से प्रस्तुत करते हैं। पातंजल योगसूत्र में समाधि को अष्टांग योग की अंतिम अवस्था माना गया है, जिसमें चित्त की समस्त वृत्तियों का निरोध करके आत्मा को उसके शुद्ध स्वरूप में स्थापित किया जाता है। यहाँ समाधि को संप्रज्ञात और असंप्रज्ञात रूपों में विभाजित किया गया है, जो आत्मसाक्षात्कार और मोक्ष की ओर ले जाते हैं। इसके साथ ही समाधि को चित्त की वृत्तियों के निरोध के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसमें ध्यान एवं धारणा के माध्यम से चित्त को शुद्ध कर, परम चौतन्य की अनुभूति को ही समाधि माना गया है। दूसरी ओर, स्वामी स्वात्माराम द्वारा रचित हठयोगप्रदीपिका हठयोग का प्रमुख ग्रंथ है, जो समाधि की प्राप्ति के लिए शारीरिक शुद्धिकरण, प्राणायाम, मुद्रा और कुंडलिनी जागरण पर बल देता है। हालाँकि, दोनों ग्रंथों में समाधि को योग का चरम लक्ष्य माना गया है, फिर भी उनके दृष्टिकोण और साधना विधियों में अंतर है। पातंजलि समाधि को चित्त वृत्तियों के निरोध और ध्यान के गहन अभ्यास से जोड़ते हैं, जबकि हठयोग में इसे शारीरिक और प्राणायामिक प्रक्रियाओं के माध्यम से आत्मा और मन के ऐक्य के रूप में देखा गया है। यह अध्ययन समाधि की इन दोनों अवधारणाओं की तुलनात्मक विवेचना प्रस्तुत करता है, जिससे योग साधना की गूढ़ता और उसकी विविध परंपराओं की गहराई को समझा जा सके।

यह शोध पत्र पातंजल योगसूत्र एवं हठयोगप्रदीपिका में समाधि का स्वरूप, भिन्नताओं एवं समानताओं का एक तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करेगा।

पातंजल योग सूत्र में समाधि– पातंजल योगसूत्र में समाधि को योग का चरम लक्ष्य माना गया है, जिसमें समाधि की विभिन्न अवस्थाओं और स्वरूपों का विस्तृत वर्णन मिलता है। पातंजल योगसूत्र में समाधि प्राप्ति के लिए अष्टांग साधनों को महत्वपूर्ण स्वीकार किया गया हैं। योगसूत्र में समाधि को इस प्रकार से परिभाषित किया गया हैं ; "ध्येयाकरनिर्भास, स्वरूपशून्य के समान ध्यान ही समाधि हैं।"[1] अर्थात् समाधि में ध्येय इतना स्थायित्व या विस्तार प्राप्त कर लेता हैं कि वह चित्त को पूर्णतया आवृत्त कर लेता हैं, फलस्वरू अर्थमात्र की ही प्रतीति होती हैं। चित्त का स्वरूप ही शून्य हो जाता हैं।

योगसूत्र में समाधि की दो अवस्थाओं को स्वीकार किया गया हैं। प्रथम संप्रज्ञात समाधि जिसको साबिज समाधि कहा जाता है और यह समाधि की प्रारंभिक अवस्था हैं। "जब एकाग्र अवस्था में आये हुए चित्त में वाह्य विषय अर्थात् प्रमाण आदि वृतियों का निरोध हो जाए तब उसे संप्रज्ञात समाधि कहते हैं।"[2] संप्रज्ञात समाधि में प्रारंभिक अवस्था से लेकर अंतिम अवस्था तक चार स्थितियां प्राप्त होती हैं। जिन्हें क्रमशः निम्नलिखित प्रकार से वर्णन किया गया हैंरू

1. वितर्कानुगत समाधिः समाधि की इस अवस्था में स्थूल पदार्थों का जान होता हैं। "शब्द, अर्थ और ज्ञान के भेदों से मिली हुई सवितर्क संप्रज्ञात होती हैं।षङ समाधि की स्थिति इसका अगला चरण हैं, तथापि समाधि के अति निकट होने के कारण इसे भी पतंजलि ने समाधि { समापति} में रख लिया हैं, किंतु उसे सवितर्क समाधि या सवितर्क समापति नाम दिया हैं। सवितर्क समाधि { समापति} में चित्त की वृत्तियां निरोधाभिमुख रहती हैं। उस अवस्था में चित्त किसी भी पदार्थ में स्थिर तो रहता हैं, किंतु उसमें उस पदार्थ का नाम जाती आदि का ज्ञान भी सम्मिलित रहता हैं।

2. विचारानुगत समाधिः द्वितीय अवस्था का नाम विचारानुगत समाधि हैं। "सविचार वह समाधि हैं जब तन्मात्र तथा अंतः करण, इन सुक्ष्म पदार्थों को विषय बनाकर देश, कल आदि के विचार से मिलकर भावना उत्पन्न हुई हो।"[4]

तदेवार्थमात्रनिर्मासं स्वरुपशून्यमिव समाधिः। योगसूत्र 3/3

अनुरूपी लेखक/ संयुक्त लेखक

तत्रैकायचेतसि यः प्रमाणादिवृत्तीनां बाह्यविषयाणां निरोधः स सम्प्रज्ञातसमाधिः। सर्वदर्शनसंग्रह, पृ०,587

तत्र शब्दार्थज्ञानविकल्पैः संकीर्णा सवितर्का। योगसूत्र, 1/42

यदा तन्मात्रान्तः करणलक्षणं सूक्ष्मं विषयमालम्ब्य देशाद्यवच्छेदेन भावना प्रवर्तते तदा सविचारः । सर्वदर्शसंग्रह, पृ०, 587

कहने का तात्पर्य यह हैं कि जब वृत्तिनिरोध हेतु अभ्यास अधिक उन्नत हो जाता हैं तब उस चिंतन में स्थूल प्रमेय तथा उसके ग्राहक प्रमाण, बाह्य इंद्रियां इत्यादि उसमें से निकल जाते हैं, जिसके फलस्वरूप सुक्ष्म प्रमेय में चिंतन स्थिर हो जाता हैं। इसी प्रक्रिया को विचारानुगत समाधि कहा जाता हैं।

3. आनंदानुगत समाधिः यह संप्रज्ञात समाधि की तृतीय अवस्था हैं। "जब रजोगुण और तमोगुण के लेशमात्र अंश से युक्त चित्त की भावना की जाती जाती हैं तब सुख और प्रकाश से निर्मित सत्व का उद्रेक होता हैं। यही सानंद समाधि हैं।"[5] संप्रज्ञात समाधि की इस अवस्था में चित्त–शक्ति दबी हुई होती हैं, और सत्व प्रबल रहता हैं।

4. अस्मितानुगत समाधिः सानंद संप्रज्ञात समाधि की स्थिति प्राप्त होने के पश्चात पुनः जब अधिक निरंतर अभ्यास से शेष रजस् और तमस क्षीण होने लगता हैं जिसके फलस्वरूप सत्व के प्रकाश की वृद्धि होती हैं। इस प्रकार शुद्ध चित्त के सहयोग से आत्मा अपने स्वरूप का साक्षात्कार कर पता हैं। यह अवस्था वृत्तिनिरोध के अभ्यास की पराकाष्ठा में संप्रज्ञात समाधि की अंतिम अवस्था हैं।

किसी कारणवश संप्रज्ञात समाधि में सभी वृतियों का निरोध न होने से असंप्रज्ञात समाधि अथवा निर्बीज समाधि की आवश्यकता पड़ती हैं। इस अवस्था में समस्त वृत्तियों का निरोध हो जाता हैं और चित्त वृत्तिरहित अवस्था को प्राप्त कर लेता हैं। "परा वैराग्य के बार बार अभ्यास करने से जब मानसिक क्रियाएं शांत होकर केवल संस्कार शेष रह जाते हैं तो वह असंप्रज्ञात समाधि हैं।"[6] आत्मा का प्रकृति के साथ संयोग का सर्वथा अभाव हो जाता हैं। जिसके फलस्वरूप आत्म अपने शुद्ध स्वरूप को प्राप्त कर लेता हैं। इस प्रकार, योगसूत्र के अनुसार समाधि न केवल आत्मज्ञान की प्राप्ति का साधन है, बल्कि मोक्ष प्राप्ति की अवस्था भी है, जहाँ आत्मा प्रकृति के बंधनों से मुक्त हो जाती है।

हठयोगप्रदीपिका में समाधि– जब हम हठयोगप्रदीपिका में समाधि के स्वरूप का अवलोकन करते हैं तो स्वात्माराम कृत हठयोगप्रदीपिका में जो चतुर्थ उपदेशों का वर्णन प्राप्त होता हैं, उसमे चतुर्थ उपदेश का नाम समाधि हैं। हठयोगप्रदीपिका के अनुसार समाधि की अवधारणा की व्याख्या इस प्रकार हैः

स्वात्माराम का हठयोगप्रदीपिका विभिन्न उपदेशों पर आधारित है जिसमें चार, पांच, छः तथा दस अध्याय वाले उपदेश प्राप्त होते हैं, परंतु चतुर्थ उपदेश वाली हठयोगप्रदीपिका का अधिक प्रचलन हैं जिसका हमने अवलोकन किया हैं और उसी की एक संस्कृत में टिका प्राप्त होता हैं जिसे हठयोगप्रदीपिका की ज्योत्स्नाटीका कहते हैं जो ब्रह्मानंद कृत हैं। यहाँ पर हमने ज्योत्स्नाटीका के अनुसार समाधि को स्पष्ट करने का प्रयास किया हैं। हठयोगप्रदीपिका के चतुर्थ उपदेश को समाधिक्रम नामक अध्याय कहा जा सकता हैं। जिसमें समाधि की परिभाषाएं, समाधि के सोलह प्रकार के क्रम, समाधि की प्राप्ति का उच्च साधन नादानुसंधान का उल्लेख प्राप्त होता हैं।

हठयोगप्रदीपिका के अनुसार "जैसे जल और नमक मिलकर एक हो जाते हैं, वैसे ही आत्मा और मन ऐक्य होकर समाधि कहलाता हैं, जब प्राण समान रूप से क्षीण होता हैं और मन भी लीन हो जाता हैं तब वह समरसता समाधि कही जाती हैं।"[7] अर्थात, जिस प्रकार जल में नमक डालने पर नमक पूरी तरह से घुल जाता है उसी प्रकार जब मन का आत्मा में लय हो जाता हैं, तब समाधि की अवस्था उत्पन्न होती है। अतः मन का आत्मा में तादात्म्य होने पर आत्मा एवं मन का ऐक्य समाधि कहा जाता है। इस प्रकार समाधि की अवस्था वह हैं जीवात्मा और परमात्मा की एकता का ज्ञान होता हैं और इस अवस्था में योगी के साथ एकरस होकर परब्रह्म हो जाता हैं। ज्योत्स्नाटीका में ब्रह्मानंद के अनुसार समाधि इस प्रकार हैरू "जिस प्रकार सिन्धु देश में उत्पन्न लवण अर्थात सैन्धव पानी के संयोग से पानी का ही रूप प्राप्त कर लेता हैं उसी प्रकार आत्मा और मन भी, मन को आत्मा में धारण करने से अर्थातमन के आत्माकार हो जाने से वे साम्यता को प्राप्त कर लेते हैं, इसी आत्मा और मन के ऐक्य को समाधि शब्द से जाना जाता हैं।"[8]

सलिलै सैन्धवं यद्वत्साम्यं भजति योगत, तथात्ममनसोरैक्यं समाधिरभिधीयते।

यदा संधीयते प्राणो मानसं च प्रलीयते, तदा समरसत्वं च समाधिरभिधीयते। हठयोग प्रदीपिका, 4/5, 4/6,4/7

हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना, पृ०, 268।

इस प्रकार समाधि के सम्बन्ध में स्वामी स्वात्माराम योगी और योगी ब्रह्मानन्द दोनों ने ही अपने ग्रन्थ हठयोगप्रदीपिका एवं हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना में समाधि की अवधारणा को प्रस्तुत किया है और समाधि के विषय में दोनों के ही विचार समानरुप से प्राप्त होते हैं परन्तु दोनों के ही अनुसार समाधि की व्याख्या भिन्न–भिन्न प्रकार से की गयी है।

समाधिक्रम को बताने के लिए स्वात्माराम योगी ने समाधि के समानार्थक शब्दों का प्रयोग किया है क्योंकि प्रत्येक शब्द के भिन्न अर्थ होते हैं, जिसमें भेद के आधार पर सोलह की संख्या दी गयी है। समाधि का भेद क्रमबद्ध होने के कारण ग्रन्थ में समाधिक्रम कहा गया है, जो इस प्रकार है रू ष्राजयोग, समाधि, उन्मनी, मनोन्मनी, अमरत्व, लयतत्व, शून्याशून्य, परमपद, अमनस्क, अद्वैत, निरालम्ब, निरंजन, जीवन्मुक्ति, सहजा और तुर्या–यह सब एक के ही वाचक है।[9] अर्थात् ये सभी एक ही समाधि के नाम है।

समाधि के साधन के लिए स्वात्माराम योगी हठयोगप्रदीपिका में गोरक्षनाथ द्वारा अनुभव में लायी गयी एक विधि का विस्तृत विवेचन करते हैं, जिसे नादानुसंधान कहते हैं। जिसे पूर्व के योग साधना पद्धति अध्याय का विषय बनाना ही उचित प्रतीत होने के कारण वहाँ विवेचित किया गया है। स्वात्माराम योगी सभी योगों में आरम्भावस्था, घटावस्था, परिचयावस्थातथा निष्पत्ति अवस्था नामक चार अवस्थायें बताते हैं और इन अवस्थाओं का विस्तृत वर्णन द्वितीय अध्याय में किया गया है।

निष्कर्ष– पातंजल योगसूत्र और हठयोगप्रदीपिका, योगशास्त्र के दो प्रमुख ग्रंथ हैं, जो योग की दो भिन्न परंपराओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। पातंजल योगसूत्र में समाधि को अष्टांग योग की अंतिम अवस्था माना गया है, जिसमें चित्त की समस्त वृत्तियों का निरोध करके आत्मा को उसके शुद्ध स्वरूप में स्थापित किया जाता है। इसमें समाधि को संप्रज्ञात और असंप्रज्ञात रूपों में वर्गीकृत किया गया है, जहाँ संप्रज्ञात समाधि में विभिन्न अवस्थाएँकृवितर्कानुगत, विचारानुगत, आनंदानुगत, और अस्मितानुगतकृचेतना की गहन शुद्धि और आत्मसाक्षात्कार की प्रक्रिया को दर्शाती हैं। वहीं, असंप्रज्ञात समाधि में समस्त संस्कारों का क्षय होकर आत्मा परम शुद्ध अवस्था में स्थित हो जाती है, जो मोक्ष का द्वार खोलती है।

दूसरी ओर, हठयोगप्रदीपिका में समाधि को आत्मा और मन के पूर्ण तादात्म्य के रूप में वर्णित किया गया है, जहाँ दोनों का भेद मिट जाता है और योगी ब्रह्मानंद को प्राप्त करता है। स्वामी स्वात्माराम ने समाधि के सोलह भेदों का उल्लेख किया है, जो भिन्न–भिन्न नामों से ज्ञात होते हैं, किंतु सभी एक ही अवस्था की ओर संकेत करते हैं। हठयोग में समाधि प्राप्ति के लिए नादानुसंधान जैसे साधनों पर बल दिया गया है, जो योगी को मन के पूर्ण विलय की ओर ले जाता है।

यद्यपि दोनों ग्रंथ समाधि को योग का परम लक्ष्य मानते हैं, फिर भी उनकी प्रक्रियाओं और दृष्टिकोण में भिन्नता है। पातंजलि समाधि को चित्त की वृत्तियों के निरोध और ध्यान की गहनता से जोड़ते हैं, जबकि हठयोग में इसे शारीरिक और प्राणायामिक प्रक्रियाओं के माध्यम से आत्मा और मन के ऐक्य के रूप में देखा गया है। दोनों ही ग्रंथ अपने–अपने दृष्टिकोण से योग साधना के चरम बिंदु की व्याख्या करते हैं, जो साधकों को आत्मज्ञान और मोक्ष की ओर अग्रसर करते हैं। पतंजलि का दृष्टिकोण मानसिक एवं दार्शनिक है, जबकि हठयोग व्यावहारिक एवं ऊर्जा–आधारित विधियों पर बल देता है। दोनों ही योगमार्ग आत्मसाक्षात्कार और मोक्ष प्राप्ति की ओर अग्रसर करते हैं, परंतु उनकी प्रक्रिया और अनुभव भिन्न हैं।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. परमहंस स्वामी, अ. भा. योग दर्शन (योग प्रभाकर भाष्य सहित). स्वामी केशवानंद योग संस्थान।
2. त्रिपाठी, व. (2007). हिन्दी पातञ्जल–योगदर्शन (व्यासभाष्य सहित की सटीक हिन्दी व्याख्या). चौखम्भा कृष्णदास अकादमी।
3. चंद, त्रिलोक। (1991). पातंजलयोग और श्रीअरविन्दयोग। ईस्टर्न बुक लिंकर्स।
4. स्वामी सत्यापति परिव्राजक.(2003), योगदर्शनम, दर्शन योग महाविद्यालय।
5. स्वात्माराम योगी, (2006). हठयोग प्रदीपिका, खेमराज श्रीकृष्णदास, मुंबई।
6. Svatmarama. (1987). Hatha Yoga Pradipika (Swami Vishnu-Devananda, Practical Commentary). Motilal Banarsidass Publishers.
7. Patañjali. (1982). Patanjali's Yoga Sutras: With the commentary of Vyāsa and the gloss of Vāchaspati Miśra (R. Prasāda, Trans.; R. B. Śrīśa Chandra Vasu, Intro.). Oriental Books Reprint Corporation.
8. Tola, F. & Dragonetti, C. (1987). The Yogasūtras of Patañjali: On concentration of mind (K. D. Prithipaul, Trans.). Motilal Banarsidass .

*****